Volume : 1 | Issue : 12 | September 2012 ISSN - 2249-555X

Research Paper Literature

छायावादी काव्य में सांस्कृतिक चेतना

*Parekh Neha S.

*Lecture (Hindi),I.I.T.E. Gandhinagar.

संस्कृति शब्द 'सम' उपसर्ग के साथ संस्कृत की 'कृ' धातु से बनता है । इसका शाब्दिक अर्थ 'साफ' या परिष्कृत करना है । संस्कृति का अर्थ हिन्दु संस्कृति विशेषांक में "परम्परागत अनुस्यूत संस्कार[१] बतलाया गया है । संस्कृति शब्द सद आचरण के अर्थ विभिन्नकालों में विभिन्न रुप से समझा जाता है लेकिन कवियों और कलाकारों ने सौंदर्य चेतना को संस्कृति का अनिवार्य चिन्ह माना है ।"

संस्कृति के विषय में अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएँ दी है डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार – "संस्कृति विवेक बुद्धि का जीवन को भले प्रकार जान लेने का नाम है ।"[२] इसके अलावा डॉ. मंगलदेवी शास्त्री का मत भी ध्यान देय है, व कहते है "सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करनेवाले उन आदर्शो की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए ।"[३]

संस्कृति और सामाजिक संगठन अन्योन्याश्रित है । संस्कृति और सभ्यता का भी परस्पर गहरा सम्बन्ध है । संस्कृति का सम्बन्ध कला और बुद्धि से है जबकि सभ्यता का भौकि पदार्थो से । महान साहित्यकार अपने साहित्य में संस्कृति को भव्य रुप में प्रस्तुत करता है जिससे आनेवाली नस्लें उसमें से मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें । "हमारी प्राचीन संस्कृति महान थी और कालिदास जैसे महान साहित्यकार ने उसे अपने साहित्य में पिरोया ही नहीं, अपनी लेखन कला और कौशल से उसे भव्य रुप देकर विश्व व्यापी भी बना दिया ।"[४] भारतीय संस्कृति का इतिहास जितना पुराना है उतना विस्तृत भी है । प्राचीनता, आध्यात्मिकता, समनव्यशीलता, सर्वांगीणता और चिरस्थापीयत्व भारतीय संस्कृति की विशेषताए हैं । "भारत वर्ष एक विशालकाय एवं प्राचीन देश है जिसको प्रकृति ने सर्वथा सम्पन्न बनाया है । मैक्स मूलर इसी के अपार प्राकृतिक सुषमा की सराहना करते हुए धरती का स्वर्ग कहकर पुकारते है ।"[५]

विविधता में एकता ही भारतीय संस्कृति का सौंदर्य है वास्तव में "भारतीय संस्कृति का मूल सिद्धांत मानवप्रेम ही रहा । इसके लिए समस्त वसुधा ही एक कुटुम्ब बन गई है ।"[६] मानव जीवन का उद्देश्य विकृति से बचकर सुकृति की ओर ले जाने वाला मार्ग प्रशस्त करता है । इस प्रकार साहित्य और संस्कृति का भी पारस्परिक संबंध अविच्छिन्न है । "सही मायने में साहित्य के माध्यम से ही संस्कृति की परम्परा बच सकी है । साहित्य संस्कृति का वह अंग विशेष है जो लिखित या मुद्रित शब्द के माध्यम में हमारे सामने उपस्थित है । इसीलिए डेविड डाईटेज जैसे लेखक साहित्य को संस्कृति का एक खण्ड़ या अंश मानते है ।"[७]

सांस्कृतिक धरोहर साहित्यिक कृतियों में व्यक्ति होकर अमरत्व प्राप्त करती है और उसके साथ-साथ साहित्य भी संस्कृति का आधार पाकर चिरंजीवी बन जाता है । हिन्दी साहित्य भी इसी संस्कृति की धरोहर को आगे बढानेवाला साहित्य है । समय के बदलाव के साथ-साथ विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में संस्कृति के प्रभाव को परिलक्षित किया है, जिनमें छायावादी युग के कवियों ने भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

आधुनिक छायावादी काव्य में दार्शनिक और सांस्कृतिक चेतना विद्यमान है । राजाराम मोहनराय, केशवचंद्रसेन, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, रवीन्द्रनाथ टागोर आदि महानुभावों ने समाज सुधार करते हुए भी प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शो को जीवंत रखा । सांस्कृतिक नवजागरण की चेतना से हिन्दी की छायावादी कविता अत्यन्त घनिष्ठ रुप से सम्बन्ध है । छायावादी आंदोलन की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक नवजागरण का महत्त्वपूर्ण योगदान था ।

छायावाद में जिन काव्यों की रचना की गई उनमें सांस्कृतिक आदर्शो की अभिव्यक्ति हुई है । उसमें समकालीन सांस्कृतिक तत्त्वों का मानवतावादी भूमि पर समावेश हुआ है । यह काव्य सर्वप्रथम बुनियादी तथा विशद सांस्कृतिक आधार बना सका है । इसमें सामायिक जीवन के विविध रुपों की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है । इसकी मानवीय चेतना नितान्त मैलिक है श्री राजशेखर सक्सेना लिखते है – "द्विवेदीयुग राष्ट्रीय जागरण ही क्रिया का काल था । स्वतंत्रता के निमित्त राष्ट्रीय गौरव को उँचा करना तथा भारतीयता की रक्षा को प्राचीन संस्कृति में देखना ही उसका आदर्श था । इस काल में कवियों की आत्मा में तेज तो था ही पर जागृति उतनी न थी, स्वरों में लक्ष्य तो था पर ओज नहीं था । यह सब कार्य क्रान्तिकारी दार्शनिक स्वरुप से सम्पन्न साहित्य ही कर सकता था, जो छायावाद के रुप में अवतरित हुआ ।"[८]

अतः आधुनिक हिन्दी काव्यधारा में छायावाद ही सर्वथा उदात्त और व्यापक सांस्कृतिक चेतना को ग्रहण कर सका है । इसके लिए हमें छायावाद के प्रमुख चार स्तंभ प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी के रचना कौशल को देखना पडेगा ।

'कामायनी' जैसे श्रेष्ठ छायावादी महाकाव्य की रचना करनेवाले जयशंकर प्रसादने छायावादी काव्य को सबसे अधिक सांस्कृतिक चेतनाप्रदान की है । सांस्कृतिक चिन्तन में प्रसाद ज्ञान और सौंदर्यबोध को केन्द्र में रखकर विचार करते है, क्योंकी यह ही संस्कृति के मौलिक मूल्य है । भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति प्रसाद ने दो प्रकार से की है (१) परोक्ष रुप से और (२) प्रत्यक्ष रुप से जीवन के सहज स्वाभाविक रुप की प्रतिष्ठा "प्रसाद" की एक महान सांस्कृतिक देन है । जयशंकर प्रसाद के अनुसार "संस्कृति सौन्दर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है ।"[९]

प्रसाद की रचनाओं में भारतीय संस्कृति के सर्वांगीण तत्त्वों की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है । वैदिककाल से लेकर आधुनिक युग तक के समस्त सांस्कृतिक उपादानों का सुन्दर समन्वय प्रसाद की रचनाओं में हुआ है । 'कामायनी' जिसके अन्तर्गत भौतिक, आध्यात्मिक, सुख-दुःख, प्रवृत्ति, निवृत्ति, बुद्धि हृदय इच्छा, ज्ञान क्रिया के समन्वय का भाव है प्रसाद ने कामायनी में कहा है –

"औरों को हसते देखो मनु

हँसो और सुख पाओ

अपने सुख को विस्तृत करलो

सबको सुखी बनाओ ।"[१०]

यह भारतीय संस्कृति का पवित्र उद्देश्य है । प्रसादजी की दृष्टि सर्वथा सांस्कृतिक रही है । उनका दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति और सभ्यता की नूतन व्याख्या प्रस्तुत करने का रहा है । उन्होंने मानवीय संस्कृति को प्रधानता दी है और मानवता के विजय की कामना की है प्रसाद ने कामायनी में श्रद्धा के सर्वस्व समर्पण द्वारा दाम्पत्य जीवन का सूत्रपात और सन्धिपद[६] का आदर्श प्रस्तुत किया है ।

"आँसु से भीगे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा

तुमको अपनी स्मित रेखा से यह सन्धि पत्र लिखना होगा ।"[११]

नारी को सम्मानित भाव से देखना भारतीय संस्कृति का परम गुण है जिसका उल्लेख प्रसादजी ने कामायनी में किया है और नारी को श्रद्धा का पुँज बताया है –

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में

पीयूष स्त्रोत सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में ।"[१२]

प्रसाद का सांस्कृतिक दृष्टिकोण मानवीय है और उनका लक्ष्य भारतीय

दर्शन की आस्थावादी प्रवृत्तियों को सम्मुख लाने का रहा है । उनके काव्य में राष्ट्रप्रेम की भावना सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर सांकेतिक रुप में आई है । इस तरह देखा जाये तो प्रसाद का समस्त काव्य एक महान सांस्कृतिक चेतना से युक्त है ।

छायावादी युग में प्रसाद के साथ-साथ निराला भी एक सशक्त रचनाकार है । वे जातीय संस्कार को ही संस्कृति मानते है । उन्होंने तुलसीदासकालीन भारतीय संस्कृति के विषय में कहा है –

"भारत के नभ का प्रभावपूर्ण

शीतलछाया सांस्कृतिक सूर्य

अस्तमित आग रे – तमस्यूर्य विड़मण्डल

उद के आसन पर शिरस्त्राण

शासन करते है मुसलमान ।"[१३]

अर्थात् मुसलमानों के आक्रमण से हिन्दु संस्कृति का जो ह्रास हो गया है उसी का यहाँ वर्णन है । मुसलमानों द्वारा विजित किए जाने पर हिन्दुओं के जातीय संस्कारो का ह्रास हुआ । निराला स्वयं भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान स्वरुप थे । उनके काव्य को हम सांस्कृतिक जागरण का प्रतिनिधि मानते है उन्हें भारतीय संस्कृति के प्रति अनन्य निष्ठा थी । उन्होंने धर्मनिष्ठा को विराट शक्ति के रुप में प्रतिष्ठित किया है । वे इस शक्ति को समाज तथा साहित्य के लिए अपेक्षित समझते है ।

निराला का समग्र काव्य सांस्कृतिक भूमिका पर चिन्तनप्रदान दार्शनिक काव्य है । निरालाजीने स्वामी रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानंद के विचारों को अपनाकर काव्य को दार्शनिक और सांस्कृतिक आधार लिया ।

निराला का काव्य भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण की सफल अभिव्यक्ति है । यह समकालीन और राष्ट्रीयचेतना से अनुप्राणित है । वे सदैव जड़ मान्यताओं और रुढिगत संस्कारों के प्रति सजग रहे । उन्हें स्वच्छन्दता प्रिय थी इसी स्वच्छन्दता उनकी रचनाओं में दिखाई देती है । वे अपने प्रेम को सीमित नही रखना चाहते थे –

"छोटे से घर को लघु सीमा में

बँधे है क्षुद्र भाव

यह सच है प्रिये, प्रेम का पयोधि तो उमडता है

यदा ही नि:सीम भू पर ।"[१४]

"तुलसीदास" काव्य में सांस्कृतिक पतन का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है कि यह तुलसी के युग के सत्य के समान आधुनिक युग का भी सत्य है । 'यमुना के प्रति' कविता में उन्होंने भारतीय संस्कृति की महानता का स्मरण करवाया है । निरालाजी अपनी पीढ़ी के एक श्रेष्ठ रचनाकार थे । आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी न यथार्थ ही कहा है – "अपने व्यक्तित्व और वैयक्तिक साधना के बल पर उनके काव्य में एक सामंजस्य की भूमिका मानवतावादी स्तर पर है, मानवजीवन को उनके काव्य में एक सामंजस्य की भूमिका मानवतावादी स्तर पर है मानवजीवन के प्रति आस्था पर निर्मित है यह निराला का मूल्यवान प्रदेय है ।"[१५]

निरालाजी ने अपने काव्य में पति-पत्नि, भाई बहन, पिता-पुत्री के स्नेह सम्बन्धो को अभिव्यक्त किया । 'सरोज स्मृति' उनका शोकगीत है जो उन्होंने अपनी बेटी सरोज की मृत्यु के बाद लिखा था । 'बहू' कविता में बहु की जो दयनीय दशा के साथ दाम्पत्य प्रेम के संकेत मिलते है । 'रानी और कानी' कविता में माता-पुत्री के स्नेह की सरल अभिव्यक्ति हुई है । उनके इन काव्यों में हमें भारतीय आदर्श गृहस्थ जीवन के सांस्कृतिक चित्र भरे हुए दिखते है । निरालाजी की दृष्टि भारतीयनारी की ओर भी उन्मुख हुई है । आज नारी और पुरुष में साम्य का होना आवश्यक है । उन्होंने स्वयं लिखा है – "परन्तु अब आवश्यकता है हर एक मनुष्य के पुतले में चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, कोमल और कठोर दोनों भावों का विकास हो । अब दोनों के लिए एक ही धर्म होना चाहिए । पुरुष के अभाव में स्त्री हाथ समेटकर निश्चेष्ठ बैठी न रहे । उपार्जन से लेकर सन्तान, पालन, गृहकार्य आदि वह सम्भाल सके ऐसा रुप, ऐसी शिक्षा उसे मिलनी चाहिए । पहले दोनों के भाव और कार्य अलग-अलग थे अब दोनों के भाव और कार्यो का एक ही में साम्य होना आवश्यक है । इस तरह गृहस्थ धर्म में स्वतंत्रता बढेगी, परावल्मबन न रह जाएगा । स्त्रियाँ भी मेघा की अधिकारीणी होगी । हृदय और मस्तिष्क दोनों में स्वीकरण होगा । एक ही में हम उभयधर्मी को देख सकेंगे ।"[१६]

निरालाने 'तोड़ती पत्थर' कविता में श्रमिकवर्ग की नारी का उदात्त चित्र प्रस्तुत किया है । वह आर्थिक वैषम्य को मिटा देने के लिए प्रयत्नशील है । –

"वह तोड़ती पत्थर

देखा मैने इलाहबाद के पथ पर

गुरु हथौड़ा लिए हाथ

करती बार-बार प्रहार

वह तोड़ती पत्थर ।"[१७]

निराला रचित 'कुकुरमुत्ता' सर्वोत्कृष्ठ सामायिक व्यंग्य रचना है, जिसमें व्यग्य और विनोद के बीच यथार्थ का चित्रण है ।

"अबे सुनबे गुलाब

भूल मत पाई जो खुश्बु रंगे आब

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट

डाल पर इतराता है कैपिटलिष्ट ।"[१८]

आनंद दुलारे बाजपेयीने इस संदर्भ में लिखा है कि "कुकुरमुत्ता में विनोद की सृष्टि अतिरंजित वर्णनो द्वारा की गई है । यत्र तत्र यथार्थवादी चित्रण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है ।"[१९]

'निराला' रचित 'राम की शक्ति पूजा' भी मनौवैज्ञानिक परिवेश में एकै आध्यात्मिक कृति है जो सांस्कृतिक आदर्शो से परिपूर्ण है, तो सरोज-स्मृति में सामाजिक रुढियों और बन्धनों के प्रति उच्छेदन का तीव्र स्वर है जिसकी अपनी सांस्कृतिक विशेषता है । अत: निराला के काव्य में सांस्कृतिक चेतना को पूर्ण रुप से चरितार्थ किया गया है । उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक और आधुनिक परिवेश में काव्य विषयों की अपनी सांस्कृतिक दृष्टि के अनुरुप नवीन मूल्यों एवं आदर्शो से युक्त किया है ।

छायावादी युग में पंत और महादेवी ने भी संस्कृति के उत्थान में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । पंत की सांस्कृतिक चेतना का आधार मानवता है । पंतजी भारतीय उपनिषद दर्शन, स्वामी विवेकानंद और स्वामी रामतीर्थ के दार्शनिक सिद्धांत, कवि श्री रवीन्द्र तथा महात्मा गांधी के मानवतावादी दृष्टिकोण, परिचय के भौतिकदर्शन आदी से प्रभावित रहा है ।

पंतजी के काव्य में सांस्कृतिक तत्त्व आदि से अंत तक कल्पना पर अंकित है । कवि नूतन संस्कृति - रचना की कल्पना करता है । पंत के काव्य की सांस्कृतिक भूमिका अधिक मनौवैज्ञानिक है । कवि नूतन संस्कृति रचना की कल्पना करते है । वे ठोस धरती के प्रश्नों को मनोरम स्वप्नों के रुप में देखते है यह कवि की यूरोपियन दृष्टि है । पंतजी योगी अरविन्द के नवचेतनावादी दर्शन से विशेष रुप से प्रभावित हुए है ।

'ज्योत्सना' से लेकर 'उतरा' तक के रचनाक्रम में पंतजी के सांस्कृतिक विचारों में मूल सांस्कृतिक समन्वय तथा नव मानवतावाद की धारणा है । इन काव्यों में मानवता के धरातल पर भौतिक एवं आध्यात्मिक पक्षों का समन्वय हुआ है । उनका कहना है – "मैं अध्यात्म और भौतिक दोनों दर्शनों के सिद्धांतो से प्रभावित हुआ है । पर भारतीयदर्शन की सामंतकालीन परिस्थितियों के कारण जो एकान्त परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है । द्रश्यजगत एवं दैएकिजीवन की माया होने के कारण उनके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसंहार मात्र है और मार्क्स के दर्शन की पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण जो वर्ग दुद्ध और रक्तक्रांति में परिणति हुई है ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पडे ।"[१९] 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की अधिकांश कविताओं में कवि का दृष्टिकोण समन्वयात्मक रहा है ।

"हाड माँस का आज बनाओगे तुम मनुज समाज

हाथ पाँव संगरिति चलावेंगे जह जीवन काज

दया उचित हो गए देख दारिद्रय असंख्य तनों का

अब दुहदा द्वारिद्रय उन्हें दोगे निरुपाय मनों का ।"[२०]

ISSN - 2249-555X

कविने सामाजिक संस्कृति का समन्वयात्मक स्वरुप ज्योत्सना में प्रस्तुत किया है । कवि स्वच्छन्दतावादी होने के नाते सामाजिक रुढियों के विरोधी है लेकिन उसका विरोध ध्वंसात्मक भूमिका पर नहीं है । वे सामाजिक प्रगति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहें है । –

“हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन

जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन ।”[२१]

इन पंक्तियों में कवि ने आवासविहिन, नग्नक्षुधातुर जीवन जीनेवाले लोगो के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए सभ्य समाज पर एक करारी चोट की है ।

कवि ने समस्त विश्व में अपने देश की सभ्यता पर गर्व किया है । पंत की सांस्कृतिक दृष्टि विशेषतः आधुनिक काव्य विषयों को ही लेकर चली है । अतः पंतजी का समग्र काव्य विषयों को ही लेकर चली है । अतः पंतजी का समग्र काव्य विश्व सांस्कृतिक भूमिका पर स्थित है । पंतजी का समन्वयवादी दृष्टिकोण अरविन्द दर्शन पर स्थित है । प्रसाद, पंत और निराला के बाद अगर छायावादी कविता में किसी का नाम गर्व से लिया जा सके तो वह है महादेवी वर्मा । वह भी भारतीय संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित है । उनके अनुसार “संस्कृति जीवन पद्धति है । यह प्रकृति परिवेश में, मानव परिवेश की संगति बैठाती है और बाह्याचार की परिष्कृति एवं अन्तर्जगत पर प्रभाव से सम्बन्धित है ।”[२२] महादेवीजीने काव्य को सांस्कृतिक भूमिका दी लेकिन छायावाद के अन्य कवियों की अपेक्षा उनकी कविता में सांस्कृतिक तत्त्वों की विरलता है । “महादेवी के सांस्कृतिक पक्ष की मूल भूमिका वैयक्तिक रही है । उनकी रचना में प्रेम, आशा, उल्लास तथा वेदना व करुणा के उद्‌गार तत्व रहे है । उनकी करुणा अध्यात्म परक है ।”[२३] महादेवीजी संस्कृति के सभी तत्त्वों को मिलाकर एक दिव्य पर भूमि पर मानव - व्यक्तित्व को ले जाने के लिए विकल है । जीवन में विविधता में एकता की स्थापना भारतीय संस्कृति की विशेषता है । महादेवी उस शाश्वतचेतन का साक्षात्कार चाहती है वे कहती है – “मूल तत्त्व न जीवन के कभी बदले है और न काव्य के, कारण वे उस शाश्वत चेतना से सम्बन्ध है जिसके तत्त्वतः एक रहने पर ही जीवन की अनेक रूपता निर्भर है ।”[२४]

महादेवी के काव्य में संस्कृति के मूलतत्त्व करुणा, शान्ति और विश्वप्रेम का भाव है । वे स्वयं लिखती है – “करुणा का रंग ऐसा है जो जीवन की ब्रह्मरेखाओं को एक कोमल दिप्ती दे देती है ।”[२८] वे मानती है कि जीवन में संघर्ष ही संघर्ष है । इस दुखमय अंधकार के पीछे प्रकाश की किरणें अवश्य है । अतः हमे इस स्थिति को पार करना चाहिए । उनके अनुसार – “हम आँधी तूफान के ऐसे ध्वंसमय युग के बीच में है जिसे पार कर लेने पर जीवन के सर्वोन्मुखी निर्माण का कार्य स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य हो उठेगा ।”[२६]

अतः छायावादी कवियों ने संस्कृति को संपूर्ण मानवचेतना के सार रुप में ग्रहण किया । यह एक जीवनपद्धति है जिसके आधार पर सौन्दर्यबोध के दृष्टिकोण में विस्तार होता है । सौंदर्यबोध के विस्तार में भी भारतीय संस्कारो का बड़ा महत्त्व है ।

निष्कर्ष यह है कि छायावादी काव्य की सांस्कृतिक भूमिका मानवतावादी है । यह काव्यधारा भारतीय नवजागरण के सांस्कृतिक आन्दोलनों की चेतना के अनुप्राणित है । इसमें भारतीय प्राचीन संस्कृति के उदात्ततत्त्वों और पश्चिमी सभ्यता के वैज्ञानिक एवं मानवीयतत्त्वों का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है ।

REFERENCES

(१)पृ. १३६०, बृह्य हिन्दीकोष । (२)पृ. ५३, स्वतंत्रता और संस्कृति (१९५५) विश्वंभरनाथ त्रिपाठी । (३)पृ.४, भारतीय संस्कृति का विकास - मंगलदेव शास्त्री । (४)पृ. २, भारतीय संस्कृति, पत्र- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद । (५)पृ. ८, । (६)पृ. २६, स्वतंत्रता और संस्कृति - डॉ. राधाकृष्णन । (७) पृ. ३७६, । (८)पृ. ६६, छायावादी काव्य स्वरुप और व्याख्या - राजेश्वर दयाल सक्सेना । (९)पृ. २८, काव्य और कला तथा अन्य निबंध । (१०) पृ. १००, कामायनी-प्रसाद । (११)पृ. ११६, कामायनी-प्रसाद । (१२)पृ. ११४, कामायनी-प्रसाद । (१३) पृ. ११, तुलसीदास निराला । (१४) पृ. २३८, परिमल निराला । (१५)पृ. ११९, निराला-व्यक्तित्व व कृतित्व - से प्रेमनारायण टंडन । (१६)पृ. ८९, प्रबन्ध प्रतिभा - निराला । (१७)पृ. ११०, वह तोडती पत्थर – निराला । (१८)पृ. ४२, कुकुरमुषा - निराला । (१९)पृ. ३०, आधुनिक साहित्य, आनंददुलारे बाजपेयी । (२०)पृ. ३०-३१, आधुनिक कवि भाग-२, सुमित्रानंदन पंत । (२१)पृ. ४८, युगवाणी सुमित्रानंदन पंत । (२२)पृ. २३२, पल्लवी- पंत । (२३)पृ. ११, हिमालय (भूमिका) । (२४)पृ.१, आधुनिक कवि । (२५)पृ. ५८, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध - महादेवी वर्मा ।